Anusandhanvallari
Vol 2026, No.1
January 2026
ISSN 2229-3388

भारतीय ज्ञान-परम्परा में शुक्रनीति का योगदान

डॉ. अमिता सिंह
वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर-संस्कृत
सा. बा. फु. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
चकिया, चन्दौली।
Email id- singhamita1984@gmail.com

सारांश

भारतीय ज्ञान-परम्परा हमारे प्राचीन आचार्यों द्वारा रोपित वह वृक्ष है जिसकी शाखाएँ वेद, वेदांग, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, स्मृतिग्रन्थ, नीतिग्रन्थ के रूप में पुष्पित व पल्लवित हो रही हैं। इसी बौद्धिक और दार्शनिक परम्परा में शुक्राचार्य प्रणीत शुक्रनीति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्य सभी शास्त्र व्यावहारिक जगत् के किसी एक भाग का वर्णन करते हैं, किन्तु सार्वजनिक हित एवं सामाजिक सुरक्षा का बन्धकत्व यह नीतिशास्त्र ही देता है। क्योंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टय का यह साधक है। इसका ज्ञान प्राप्त करने वाला शासक लोकप्रियता प्राप्त करता है। शुक्रनीति राज्य-संचालन या राजनीति के अतिरिक्त समाज, अर्थव्यवस्था, न्याय-व्यवस्था, दण्ड-विधान, कर-प्रणाली, कूटनीति, शिक्षा, नारी-सम्मान, श्रम और दासप्रथा जैसे विविध पक्षों को समग्र दृष्टि से प्रस्तुत करने वाली रचना है। इसमें राज्य को एक नैतिक संस्था के रूप में देखा गया है, जहाँ शासक का कर्तव्य प्रजा के कल्याण, न्याय और सुरक्षा से जुड़ा है। प्रस्तुत शोधपत्र भारतीय ज्ञान-परम्परा के व्यापक सन्दर्भ में शुक्रनीति के नीतिगत आधारों का विश्लेषण करता है। साथ ही यह स्पष्ट करता है कि इस ग्रन्थ में वर्णित शासन-सिद्धान्त, कूटनीतिक व्यवहार, कर-नीति और सामाजिक न्याय की अवधारणाएँ आधुनिक राज्यशास्त्र और प्रशासनिक चिन्तन से भी संवाद स्थापित करती हैं। समकालीन वैश्विक परिप्रेक्ष्य में, जहाँ सुशासन, नैतिक राजनीति और सामाजिक समावेशन की आवश्यकता बढ़ रही है, ऐसे में शुक्रनीति की शिक्षाएँ आज भी प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्ध होती हैं।

मुख्य शब्द- नीतिशास्त्र, राजनय, उपाय चतुष्टय, षाड्गुण्य नीति, न्यायपालिका, करारोपण, अष्टलोकपाल।

Anusandhanvallari
Vol 2026, No.1
January 2026
ISSN 2229-3388

भारतीय ज्ञान-परम्परा अनेकानेक वर्षों के दीर्घ बौद्धिक विकास का परिणाम है। यह एक ऐसा विश्वकोष है, जिसमें नाना प्रकार के ग्रन्थ-रत्न भरे पड़े हैं। वैदिक, औपनिषदिक, पौराणिक, बौद्ध, जैन और स्मार्त परम्पराओं का समन्वित रूप इसमें दृष्टिगोचर होता है। यह अद्वितीय ज्ञान एवं प्रज्ञा का प्रतीक है, जिसमें ज्ञान एवं विज्ञान, लौकिक एवं पारलौकिक, कर्म एवं धर्म तथा भोग एवं त्याग का अद्भुत संगम प्राप्त होता है। यही हमारे जीवन व समाज का मूल है और मूल से उखड़े हुए वृक्षों पर पुष्प नहीं खिलते, पक्षी ऐसे वृक्षों पर गीत नहीं गाते। जब सम्पूर्ण विश्व अज्ञान रूपी तमस् में भटक रहा था तब भारतवर्ष के तत्वज्ञ मनीषी अपने ज्ञान-भण्डार से ज्ञान के मौक्तिक प्रकीर्ण कर मानवमात्र को पशुता से मुक्तकर, श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त करते हुए आदर्श एवं सम्पूर्ण मानव बनाने में संलग्न थे। कारण कि, वे पहले से ही यह समझ चुके थे कि-

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुपुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद्भागधेयः परमं पशूनाम्।।[1]

यह परम्परा मात्र आध्यात्मिक या दार्शनिक चिन्तन तक सीमित नहीं रही, अपितु सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन के प्रत्येक पक्ष का पथ-प्रदर्शन करने वाली रही है। इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में नीतिशास्त्र का विकास हुआ, जिसका उद्देश्य केवल राजसत्ता का संचालन नहीं, बल्कि व्यक्ति, परिवार, समाज और राज्य सभी के लिए आदर्श एवं व्यावहारिक आचरण की रूपरेखा प्रस्तुत करना था।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, अतः जैसा समाज होगा उसी प्रकार उसकी गतिविधि उसके साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है। समाज के रूप-रंग, वृद्धि-ह्रास, उत्थान-पतन, समृद्धि, दुःस्थिति के निश्चित ज्ञान का, सामाजिक रीति, नीति और संस्कृति का प्रधान वाहक तत्कालीन साहित्य होता है। नीति-रीति की आत्मा तत्कालीन साहित्य के भीतर से, संस्कृति के माध्यम से अपनी मधुर झाँकी सदा दिखलाया करती है। यदि नैतिकता के भीतर मानवता की भव्य भावनाएँ हिलोरें मारती रहती हैं तो उस देश तथा जाति का साहित्य भी नैतिकता की पृष्ठभूमि से अनुप्राणित हुए बिना नहीं रह सकता। नीतिशास्त्र से सम्बद्ध साहित्य सामाजिक भावना तथा नैतिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का दर्पण है तो नैतिक आचार तथा मानवीय विचार के विपुल प्रचारक तथा प्रसारक होने के लिए नैतिकता के सन्देश को जनता के हृदय तक पहुँचाने का वाहक भी होता है।

संस्कृत साहित्य में नीति-वर्णनपरक विशेष ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इस परम्परा में मनुस्मृति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र और शुक्रनीति तीन प्रमुख प्रवाहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनुस्मृति में नीति का स्वरूप मुख्यतः नैतिक आदर्शों और धर्मप्रधान मूल्यों पर आधारित है,

जहाँ राजा को धर्म का रक्षक और समाज को नैतिक अनुशासन में बाँधने वाला माना गया है। इसके विपरीत कौटिल्य का अर्थशास्त्र राज्य-संचालन के कठोर यथार्थवादी सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, जिसमें शक्ति, दण्ड, गुप्तचर-तन्त्र और कूटनीति को राज्य की अनिवार्य आवश्यकता माना गया है। वहीं शुक्रनीति इन दोनों धाराओं के मध्य सन्तुलन स्थापित करती है। यह नीति को धर्म से विलग नहीं करती, अपितु नैतिक आधारशिला के रूप में स्वीकार करती है। साथ ही, यह भी स्पष्ट करती है कि केवल आदर्शवादी नैतिकता से राज्य-संचालन सम्भव नहीं है। अतएव आवश्यकता पड़ने पर व्यावसायिक लचीलापन, रणनीतिक निर्णय और शक्ति का सन्तुलित प्रयोग भी आवश्यक है।[2] ऐसे में शुक्रनीति नीतिशास्त्र को एक जीवन्त और यथार्थपरक रूप प्रदान करती है। नीति के अभाव में किस प्रकार के परिणामों का सामना करना पड़ता है, इसके विषय में आचार्य शुक्र कहते हैं-

रावणस्य च भीष्मादेर्वनभङ्गे च गोग्रहे।
प्रातिकूल्यन्तु विज्ञातमेकस्माद् वानरान्नरात्।।[3]

अर्थात् रावण की प्रिय अशोकवाटिका को हनुमान् नामक वानर ने उजाड़ डाला। भीष्म जैसे सहयोगी के बावजूद दुर्योधन की गायों को विराटनगर में अकेले अर्जुन ने घेर लिया। इन प्रतिकूल परिणामों से ही तो दुर्भाग्य की सूचना मिल जाती है। नीतिशास्त्र के अद्वितीय परिष्कारक भीष्म का कथन है कि चारों वर्णों के धर्म में जब कभी विप्लव होता है, जब कभी अनाचार, अनीति का बोलबाला होता है, उसका प्रतिरोध राजा का कर्तव्य बन जाता है-

चातुर्वर्ण्यस्य धर्माश्च रक्षितव्या महीक्षिता।
धर्म-संकर-रक्षा च राज्ञां धर्मः सनातनः।।[4]

भारतीय नीतिशास्त्र की परम्परा में मनुस्मृति, महाभारत का शान्तिपर्व, कौटिल्य का अर्थशास्त्र तथा शुक्रनीति विशेष रूप से उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। इनमें से शुक्रनीति का श्रेय दैत्यगुरु भृगुवंशीय शुक्राचार्य को दिया जाता है, जिन्हें असुरों के आचार्य होने के साथ-साथ कुशल कूटनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त है। परम्रागत मान्यताओं के अनुसार वे देवताओं के गुरु बृहस्पति के समकालीन थे। आचार्य शुक्र व उनके नीतिग्रन्थ का माहात्म्य हमें अधोलिखित श्लोकों से प्राप्त होता है-

शुक्रोक्तनीतिसारं यश्चिन्तयेदनिशं सदा।
व्यवहारधुरं वोढुं स शक्तो नृपतिर्भवेत्।।[5]

अर्थात् जो राजा शुक्राचार्य-निर्मित नीतिसार का निरन्तर चिन्तन करता है, वही राजा राजकार्य के भार को वहन करने में समर्थ होता है।

न कवेः सदृशी नीतिस्त्रिषु लोकेषु विद्यते।
काव्यैव नीतिरन्या तु कुनीतिर्व्यवहारिणाम्।।[6]

अर्थात् शुक्राचार्य द्वारा विरचित नीति के समान कोई दूसरी नीति त्रिलोक में नहीं है। वस्तुतः व्यवहार करने वालों के लिए नीति तो शुक्रनीति ही है, इससे भिन्न नीति तो कुनीति है। पुराणों में शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या का ज्ञाता बताया गया है, जिसके माध्यम से वे मृत असुरों को पुर्नजीवित करने की क्षमता रखते थे।[7] यह विद्या मात्र चमत्कारिक शक्ति का प्रतीक नहीं है, बल्कि गहन ज्ञान, करुणा और जीवन-संरक्षण की भावना को अभिव्यक्त करती है। संजीवनी विद्या शुक्राचार्य के उस मानवीय और नैतिक पक्ष को उजागर करती है, जिसमें वे जीवन की निरन्तरता और सामाजिक स्थायित्व को सर्वोच्च मूल्य मानते हैं। इस ऐतिहासिक और वैचारिक पृष्ठभूमि में शुक्रनीति का विकास हुआ। राजनीति के जिन विषयों को मन्वादि स्मृतियों में मान्यता दी गयी है, उन्हीं विषयों को शुक्राचार्य ने दो हजार दो सौ श्लोकों में नीतिसार में कहा है-

मन्वाद्यैरादृतो योऽर्थस्तदर्थो भागर्वेण वै।
द्वाविंशतिशतं श्लोका नीतिसारे प्रकीर्त्तिताः।।[8]

शुक्रनीति में लोककल्याण को नीति का केन्द्रीय तत्त्व माना गया है। राजा की नीति तभी सफल मानी जाती है जब वह प्रजा की सुरक्षा, न्याय और समृद्धि सुनिश्चित करे। नीतिविहीन स्वेच्छाचारी राजा पग-पग पर दुःख भोगता है। उसकी सेवा करना निश्चित रूप से तलवार की धार चाटने के समान कष्टप्रद होती है। किसी राज्य की अनीति और अकुशलता के कारण ही उसके साम्राज्य में अलगाव उत्पन्न होता है, सैन्य बल में फूट पड़ जाती है और उसके मन्त्रिमण्डल में मतभिन्नता हो जाती है। शुक्रनीति में दण्ड विधान, कर-प्रणाली और प्रशासनिक व्यवस्था सभी को लोकहित से जोड़कर देखा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि नीति केवल सत्ता के संरक्षण का साधन नहीं, अपितु सामाजिक सन्तुलन और न्याय-स्थापना का माध्यम है-

अभिषिक्तोऽनभिषिक्तो नृपत्वं तु यदाप्नुयात्।।
बुद्ध्या बलेन शौर्येण ततो नीत्याऽनुपालयन्।
प्रजाः सर्वाः प्रतिदिनमच्छिद्रे दण्डधृक् सदा।।[9]

अर्थात् राजा राजपद पर निर्वाचित हो या अनिर्वाचित, राजसिंहासनारूढ़ होते ही उसे अपने कर्तव्य का दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिए। उसे अपनी बुद्धि, शक्ति, वीरता और नीति से सर्वदा प्रजापालन में तत्पर रहना चाहिए। उसे आत्मदोषरहित होकर ही राजदण्ड धारण करना चाहिए।

शुक्रनीति में राज्य की अवधारणा अत्यन्त सुसंगठित और नैतिक आधार पर स्थापित दिखाई देती है, जिसमें राजा को राज्य का केन्द्रबिन्दु अवश्य माना गया है, परन्तु उसे निरंकुश या स्वेच्छाचारी शासक के रूप में नहीं, अपितु उत्तरदायी, धर्मनिष्ठ और प्रजावत्सल शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। शुक्रनीति के अनुसार राज्य का अस्तित्व और स्थायित्व राजा के आचरण, नीति और विवेक पर निर्भर करता है। वे कहते हैं कि जैसे बड़े-बूढ़ों के अनुसार सागर में जलस्तर की वृद्धि का कारण चन्द्रमा होता है, ठीक उसी प्रकार संसार की सम्पत्ति की वृद्धि का कारण प्रजानेत्ररंजक राजा ही होता है-

राजास्य जगतो हेतुर्वृद्ध्यै वृद्धाभिसम्मतः।
नयनानन्दजनकः शशांक इव तोयधेः।।[10]

राजा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में मनु आदि स्मृतिकारों की भाँति आचार्य शुक्र भी राजा को अष्टलोकपालों की शक्ति से समन्वित बताते हैं-

अराजके हि सर्वस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः।।
इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चापि मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः।।[11]

अर्थात् राजविहीन इस संसार में भयाक्रान्त प्राणी जब इधर-उधर चारों ओर आत्मरक्षार्थ भागने लगे, तब विधाता ने इस संसार की रक्षा के लिए इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर जैसे अष्टलोकपालों में जो चिरन्तन शक्ति है, उन्हें संग्रहीत कर उनसे पृथ्वीपालक राजा की सृष्टि की। इन अष्टलोकपालों में, जिस प्रकार इन्द्र अपने तपोबल से चराचर जगत् का स्वामी बनकर उनके अंशों का उपभोग करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजापालक बनकर प्रजा से कर ग्रहण करता है। जैसे गन्ध का प्रेरक पवन होता है उसी प्रकार प्रजा के अच्छे-बुरे कर्म का प्रेरक राजा होता है। अन्धकार-विनाशक सूर्य की भाँति प्रजा का अधर्मनाशक तथा धर्मप्रवर्तक राजा ही होता है। जिस प्रकार यमराज कुकर्मियों को दण्ड देता है, वैसे ही राजा पापियों को दण्ड देता है। जैसे अग्नि पवित्र होकर सभी देवताओं के अंश को ग्रहण करता है, ठीक उसी प्रकार राजा भी प्रजापालन में तत्पर रहकर, उससे कर ग्रहण कर उसका यथाविध विनियोग करता है। जिस प्रकार वरुण सलिल रस से समस्त सृष्टि को परिपुष्ट करता है, उसी प्रकार राजा भी अपने धन से समस्त प्रजामण्डल का परिपालन करता है। चन्द्रमा जैसे अपनी शीतल किरणों से संसार को आनन्दित करता है, उसी प्रकार राजा अपने गुण और कर्म से समस्त प्रजाकुल को आनन्दित करता है। धन-संरक्षण में चतुर राजा कुबेर की भाँति धनाधिप होता है।

शुक्रनीति राजा के लिए जिन गुणों को आवश्यक मानती है, उनमें विद्या, संयम, साहस, न्यायप्रियता और कूटनीतिक बुद्धि को प्रमुख स्थान प्राप्त है। विद्या राजा को विवेकशील बनाती है, जिससे वह उचित और अनुचित का भेद कर सके। संयम उसे अहंकार और स्वेच्छाचार से दूर रखता है, जबकि साहस बाह्य और आन्तरिक संकटों का सामना करने की शक्ति प्रदान करता है। न्यायप्रियता राज्य में सामाजिक सन्तुलन और विश्वास बनाए रखती है, तथा कूटनीतिक बुद्धि राजा को युद्ध से पूर्व सन्धि, समझौते और रणनीति अपनाने में सक्षम बनाती है।

यह दृष्टिकोण कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी साम्य रखता है, जहाँ राजा को राज्य की आत्मा कहा गया है, किन्तु साथ ही उसे नियमों और दण्ड-विधान से बंधा हुआ बताया गया है।[12] वहीं मनुस्मृति राजा को धर्म का रक्षक मानती है और उसके नैतिक आचरण पर विशेष बल देती है-

तं राजा प्रणयन् सम्यक् त्रिवर्गेणाऽभिवर्धते।
कामाऽऽत्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते।।[13]

अर्थात् दण्ड-शक्ति का उचित रीति से प्रयोग करता हुआ राजा धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों की प्राप्ति से समृद्ध होता है। इसके विपरीत अपनी कामना को प्रधानता देने वाला, शास्त्र के निर्देशन को न मानकर समान स्थिति में किसी के प्रति कुछ और किसी के प्रति कुछ व्यवहार करने वाला, न्यायप्रदान में पक्षपात करने वाला और छोटे विचार का, बिना गम्भीर विचार दण्ड का प्रयोग करने वाला राजा उसी दण्ड से आमात्य, सुहृत्, प्रजा इत्यादि का प्रकोप होने पर मारा जाता है।

आचार्य शुक्र ने सुव्यवस्थित ढंग से राज्य-संचालन हेतु एक 'मन्त्रिपरिषद्' पर अधिक बल दिया गया है। उनकी दृष्टि में एक स्वतन्त्र राजा निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी हो सकता है और अनुचित कार्य करने में प्रवृत्त हो सकता है। अतः उस पर अंकुश लगाने के लिए, औचित्यपथ पर उन्हें प्रेरित करने के लिए सुयोग्य सहायकों का होना अनिवार्य है, अतः उन्होंने 'मन्त्रिपरिषद्' के गठन पर बल दिया है-

सुहृद्भिर्भ्रातृभिः सार्द्धं सभायां पुत्रबान्धवैः।
राज्यकृत्यं सेनपैश्च सभ्याद्यैश्चिन्तयेत्सदा।।[14]

यह दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान-परम्परा में शासन को सहयोग, विवेक और सन्तुलन पर आधारित व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करता है।

मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों के चयन के सन्दर्भ में शुक्रनीति का दृष्टिकोण विशेष रूप से प्रगतिशील माना जाता है। इसमें वंश, जाति या पारिवारिक पृष्ठभूमि की अपेक्षा योग्यता,

निष्ठा, अनुभव और नैतिक चरित्र को अधिक महत्त्व दिया गया है। मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की योग्यता का उल्लेख करते हुए शुक्र ने कहा है- इन्हें कुलीन, गुणवान्, शीलवान्, शूर, विद्वान्, राजभक्त, प्रियंवद, हितोपदेष्टा, क्लेश-सहिष्णुता, धर्मनिष्ठ, चतुर, रागद्वेष-रहित और सच्चरित होना चाहिए-

न हि तत् सकलं ज्ञातुं नरेणैकेन शक्यते।
अतः सहायान् वरयेद्राजा राज्यविवृद्धये।।
कुलगुणशीलवृद्धान् शूरान् भक्तान् प्रियंवदान्।
हितोपदेशकान् क्लेशसहान् धर्म्मरतान् सदा।।
कुमार्गगं नृपमपि बुद्ध्योद्धर्तुं क्षमान् शुचीन्।
निर्मत्सरान् कामक्रोधलोभहीनान्निरालसान्।।[15]

क्योंकि दुश्चरित्र एवं अधार्मिक सहायकों के कारण राज्य विनष्ट हो जाता है। युवराज एवं मन्त्रिगण दोनों ही राजा के क्रमशः दायें-बायें अंग की दोनों बाहें, आँखें और कान होते हैं। अतः अत्यन्त सतर्कता व बुद्धिमानी से राजा द्वारा इनका चयन किया जाना चाहिए।[16]

शुक्रनीति में न्याय या दण्ड को राज्य-व्यवस्था का केन्द्रीय तत्त्व माना गया है। वे दण्ड को राजधर्म का परम रक्षक मानते हैं-

राज्ञां सदण्डनीत्या हि सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः।
दण्ड एव हि धर्माणां शरणं परमं स्मृतम्।।[17]

दण्ड के अभाव में राज्य को अराजक व अस्थिर बताया गया है, जबकि न्यायपूर्ण शासन को सामाजिक शान्ति और स्थायित्व का आधार माना गया है। वे कहते हैं कि दण्ड पाने योग्य व्यक्ति को दण्ड न देने वाले, निरपराध को दण्ड देने वाले तथा अपराध से अधिक दण्ड देने वाले राजा को लोग त्याग देते हैं और ऐसा कार्य करने वाला राजा पातकी कहलाता है। अतः लोक में भयोत्पादन हेतु शास्त्रोक्त रीति से अपराधियों को दण्ड दिया जाना कल्याणकारी कहा गया है-

दण्ड्यस्यादण्डनान्नित्यमदण्ड्यस्य च दण्डनात्।
अतिदण्डाच्च गुणिभिस्त्यज्यते पातकी भवेत्।।
अल्पदानात् महत् पुण्यं दण्डप्रणयनात् फलम्।
शास्त्रेषूक्तं मुनिवरैः प्रवृत्त्यर्थं भयाय च।।[18]

आचार्य शुक्र के अनुसार दण्ड-विधान को प्रतिशोध या क्रूर दमन का साधन नहीं, बल्कि समाज-सुधार, अनुशासन और नैतिक सन्तुलन की स्थापना का माध्यम माना गया है। राजा

को भीतर से कोमल और ऊपर से कठोर होकर प्रजा को दण्ड देना चाहिए। ऊपर से कठोर दिखते हुए स्वभाव से लोकहितैषी होना चाहिए-

अन्तर्मृदुर्बहिः क्रूरो भूत्वा स्वां दण्डयेत् प्रजाम्।
अत्युग्रदण्डकल्पः स्यात् स्वभावा हितकारिणः।।[19]

शुक्रनीति में अपराध और दण्ड के अनुपात पर विशेष बल दिया गया है। दण्ड को न तो अत्यधिक कठोर होना चाहिए और न ही इतना शिथिल कि अपराधियों में भय ही न रहे। राजा को अपराध के अनुसार अपराधी को दण्ड देना चाहिए तथा क्षमाशील व प्रजारंजक होना चाहिए-

अतः सुभागदण्डी स्यात् क्षमावान् रंजको नृपः।।[20]

दण्ड का उद्देश्य अपराधी को सुधारना, समाज को सुरक्षित रखना और भविष्य में अपराध की पुनरावृत्ति को रोकना बताया गया है।21 यह विचार भारतीय ज्ञान-परम्परा में विधि-शासन की प्राचीन और सशक्त अवधारणा को दर्शाता है। यह अवधारणा आधुनिक संवैधानिक शासन और न्यायिक व्यवस्था से भी गहन साम्य रखती है, जिससे शुक्रनीति की समकालीन प्रासंगिकता और अधिक सुदृढ़ हो जाती है।

शुक्रनीति में अर्थ को राज्य की जीवनरेखा माना गया है। क्योंकि बिना सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के न तो राज्य की सुरक्षा सम्भव है और न ही प्रजा का कल्याण। अतः आर्थिक नीति को शासन का मूल आधार स्वीकार किया गया है। वे कहते हैं कि राजा को येन-केन प्रकारेण धन संचित करना चाहिए, जिससे उस संचित धन से अपने साम्राज्य, सेना एवं धार्मिक कृत्यों की रक्षा की जा सके-

येन केन प्रकारेण धनं संचिनुयात् नृपः।
तेन संरक्षयेद्राष्ट्रं बलं यज्ञादिकाः क्रियाः।।[22]

कर-प्रणाली के सन्दर्भ में शुक्रनीति का दृष्टिकोण अत्यन्त सन्तुलित और मानवीय है। वे करों को न्यायपूर्ण, सीमित और प्रजा की आर्थिक क्षमता के अनुरूप रखने का परामर्श देते हैं। अत्यधिक करों को राज्य और प्रजा दोनों के लिए हानिकारक बताया गया है, क्योंकि इससे उत्पादन घटता है और असन्तोष बढ़ता है। अतः राजा सबसे कर लेकर दास की भाँति उस धन की रक्षा करे-

सर्वतः फलभुग्भूत्वा दासवत् स्यातु रक्षणे।[23]

आचार्य कहते हैं कि कर-संग्रह इस प्रकार किया जाये कि प्रजा को पीड़ा न हो, ठीक उसी प्रकार जैसे मधुमक्खी पुष्प को बिना क्षति पहुँचाए मधु-संग्रह करती है।

आर्थिक गतिविधियों के अन्तर्गत व्यापार, कृषि और शिल्प तीनों को समान महत्त्व दिया गया है। कृषि को राज्य की आधारशिला मानते हुए किसानों की सुरक्षा और प्रोत्साहन पर बल दिया गया है। व्यापार को राज्य की समृद्धि और अन्तर-क्षेत्रीय सम्पर्क का माध्यम माना गया है, जबकि शिल्प और उद्योग को रोजगार-सृजन और आर्थिक विविधता का स्रोत स्वीकार किया गया है।[24] शुक्रनीति की आर्थिक दृष्टि एक सन्तुलित और बहुआयामी अर्थव्यवस्था का समर्थन करती है। जिसमें दुर्बल वर्गों की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करना, आपात्काल के समय करों में छूट, सहायता और पुर्नवास की व्यवस्था को राज्य-कर्तव्य बताया गया है।[25]यह विचार आधुनिक समावेशी विकास की अवधारणा से गहरा साम्य रखता है, जहाँ आर्थिक प्रगति का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाना आवश्यक माना जाता है।

भारतीय ज्ञान-परम्परा में शुक्राचार्य को कूटनीतिक आचार्य माना गया है और शुक्रनीति में प्रस्तुत कूटनीतिक सिद्धान्त इस प्रतिष्ठा को सार्थक सिद्ध करते हैं। वे युद्ध को अन्तिम विकल्प मानते हैं और संघर्ष के पूर्व संवाद, समझौते और रणनीतिक उपायों को प्राथमिकता देते हैं-

उपायान् षड्गुणान् वीक्ष्य शत्रोः स्वस्यापि सर्वदा।
युद्धं प्राणात्यये कुर्य्यात् सर्वस्वहरणे सति।।[26]

उनके अनुसार विवेकशील राज्य वही है जो न्यूनतम हिंसा के साथ अधिकतम लाभ प्राप्त करे। शुक्रनीति में साम, दाम, दण्ड और भेद इन चार कूटनीतिक उपायों का विवेकपूर्ण और परिस्थिति-सापेक्ष प्रयोग सुझाया गया है। क्योंकि ठोस लोहे को भी उपाय से पिघलाया जा सकता है। लोक में प्रसिद्ध है कि आग को भी पानी से बुझाया जाता है परन्तु यदि उपाय का अवलम्बन किया जाए तो वही आग उल्टा पानी को सुखा देने वाली हो जाती है। उपाय से ही मतवाले हाथी के मस्तक पर पैर रखा जा सकता है-

अयोऽभेद्यमुपायेन द्रवतामुपनीयते।
लोकप्रसिद्धमेवैतद्वारि वह्नेर्नियामकम्।।
उपायोपगृहीतेन तैनेतत् परिशोष्यते।
उपायेन पदं मूर्ध्नि न्यस्यते मत्तहस्तिनाम्।।[27]

साम के अन्तर्गत संवाद व मैत्री का मार्ग अपनाया जाता है, जिससे युद्ध की सम्भावना टाली जा सके। दाम के माध्यम से आर्थिक प्रलोभन, सन्धि या सहयोग की नीति अपनाने का संकेत प्राप्त होता है। दण्ड को अन्तिम और अपरिहार्य स्थिति में प्रयोग-योग्य माना गया है, जबकि भेद का आशय विरोधी पक्ष में मतभेद उत्पन्न कर उसकी शक्ति को क्षीण करने से है। ये चारों उपाय भारतीय कूटनीति की यथार्थवादी समझ को दर्शाते हैं। शुक्रनीति में युद्ध

की स्थिति में नैतिक मर्यादाओं का पालन करना अनिवार्य कहा गया है। अनावश्यक हिंसा, निर्दोषों की हत्या और छलपूर्वक आचरण को नीतिविरुद्ध माना गया है।

अन्तरराज्यीय सम्बन्धों के सन्दर्भ में शुक्रनीति सन्तुलित और दूरदर्शी दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। पड़ोसी राज्यों के साथ मित्रता, सन्धि और सहयोग को प्राथमिकता दी गयी है, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर शक्ति-सन्तुलन बनाये रखने के लिए कठोर निर्णय लेने की भी अनुमति दी गयी है। इस दृष्टि से षाडगुण्य नीति का महत्त्व सभी नीतिकार स्वीकार करते हैं। आचार्य शुक्र कहते हैं-

सन्धिं च विग्रहं यानमासनं च समाश्रयम्।
द्वैधीभावं च संविद्यान्मन्त्रस्यैतांस्तु षड्गुणान्।।[28]

अर्थात् युद्धकाल उपस्थित होने पर विरोधी राजा के साथ मेलजोल कर लेने को 'सन्धि', विपरीत आचरण से विरोध प्रकट करने को 'विग्रह', शत्रु पर चढ़ाई करने को 'यान', शत्रु के किले को घेरे रखना 'आसन', किसी से पीड़ित होने पर दूसरे सबल का शरणागत होना 'समाश्रय' (आश्रय) और फूट डालकर विजय प्राप्त करना 'द्वैधीभाव' कहलाता है।

इस दृष्टि से शुक्रनीति की कूटनीतिक अवधारणा न तो पूर्णतः आदर्शवादी है और न ही केवल शक्ति-प्रधान। यह नीति विवेक, नैतिकता और यथार्थ का सन्तुलन प्रस्तुत करती है, जो आधुनिक अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के सिद्धान्तों, जैसे- कूटनीतिक संवाद, सन्तुलित राजनीति और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व से भी गहरा साम्य रखती है।

राज्य की सुरक्षा व समृद्धि के लिए सैन्य शक्ति को अत्यावश्यक बताया गया है। राज्य के सप्तांगों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि शक्ति के अभाव में लोग सामान्य शत्रु को भी नहीं जीत सकते हैं। देवता, दानव और मानव भी बल न रहने पर अन्य साधनों से शत्रुओं को जीतने के लिए नित्य प्रयत्नशील रहते हैं-

न बलेन विनाप्यल्पं रिपुं जेतुं क्षमाः सदा।
देवासुरनरास्त्वन्योपायैर्नित्यं भवन्ति हि।।[29]

सेना के बिना राज्य, धन और पराक्रम कुछ भी स्थिर नहीं रहता। सभी लोग बलवानों के वशवर्ती और दुर्बलों के शत्रु होते हैं। शुक्र कहते हैं कि शत्रु को पराजित करने के लिए मनुष्य का एकमात्र बल ही निरन्तर समर्थ हीता है। अतः प्रयासपूर्वक शत्रुओं के लिए दुर्भेद्य बल को राजा निरन्तर धारण करे-

बलमेव रिपोर्नित्यं पराजयकरं परम्।
तस्माद् बलमभेद्यं तु धारयेद्यत्नतो नृपः।।[30]

इस दुर्भेद्य बल के लिए राजा उन्हें उत्तम वेतन, संरक्षण, प्रशिक्षण आदि के द्वारा दक्ष बनाने का प्रयास करे। मल्लयुद्ध में कुशल समान शक्ति वाले के साथ कुश्ती लड़ाकर तथा व्यायाम कराकर एवं गुरुजनों से प्रणाम कराकर, पौष्टिक आहार देकर बाहुयुद्ध के लिए सैनिकों के दैहिक बल का संवर्धन करना चाहिए। सर्वदा व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं का शिकार, हथियार चलाने का अभ्यास एवं शूरवीर की संगति से सैनिकों के शौर्यबल को सम्यक् रूप से बढ़ाये। अच्छा वेतन देकर सैन्यबल तथा तपस्या और अभ्यास से दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर आयुधबल एवं शास्त्र तथा चतुर लोगों की संगति से सदा बुद्धिबल बढ़ाना चाहिए-

समैर्नियुद्धकुशलैर्व्यायामैर्नतिभिस्तथा।
वर्द्धयेद् बाहुयुद्धार्थं भोज्यैः शारीरकं बलम्।।
मृगयाभिस्तु व्याघ्राणां शस्त्रास्त्राभ्यासतः सदा।
वर्द्धयेच्छूरसंयोगात् सम्यक् शौर्य्यबलं नृपः।।
सेनाबलं सुभृत्या तु तपोऽभ्यासैस्तथास्त्रिकम्।
वर्द्धयेच्छास्त्रचतुरसंयोगाद्धिबलम् सदा।।[31]

आज भी सेना को प्राप्त होने वाली सुविधाएं ज्ञान-परम्परा के इन्हीं सिद्धान्तों का अवलम्बन करती हैं।

शुक्रनीति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी सामाजिक संवेदनशीलता है, जो इसे केवल राज्य-केन्द्रित नीतिग्रन्थ न बनाकर एक व्यापक सामाजिक दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित करती है। विशेष रूप से स्त्रियों के सम्बन्ध में उनके विचार द्रष्टव्य हैं। उनके अनुसार स्त्री केवल पारिवारिक इकाई नहीं, बल्कि सामाज की आधारशिला है। आचार्य शुक्र ने शुक्रनीति के चतुर्थ अध्याय में लोकधर्म-निरूपण के प्रसंग में भारतीय नारी के उदात्त जीवन पर प्रकाश डाला है। इसी क्रम में उन्होने मानव-जीवन के चार आश्रमों और उनके कृत्यों का भी विस्तृत वर्णन किया है।[32] पर्यावरण संरक्षण व मद्यपान निषेध पर प्राप्त होने वाले उनके विचार आज भी सुग्राह्य हैं।

आधुनिक युग में, जहाँ लोकतन्त्र, वैश्वीकरण और तकनीकि शासन की प्रकृति को अनवरत रूपान्तरित कर रहे हैं, शुक्रनीति के सिद्धान्त आश्चर्यजनक रूप से समकालीन प्रतीत होते हैं। यह ग्रन्थ केवल प्राचीन राजतन्त्र का मार्गदर्शन नहीं करता, अपितु सुशासन, नैतिक नेतृत्व और लोककल्याण की ऐसी अवधारणाएँ प्रस्तुत करता है, जो आधुनिक लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में भी समान रूप से उपयोगी हैं।

लोकतान्त्रिक शासन-प्रणाली में सत्ता जनता से प्राप्त होती है, अतः उत्तरदायित्व और पारदर्शिता शासन की अनिवार्य शर्तें हैं। शुक्रनीति में राजा को निरंकुश न मानकर उसे धर्म

और न्याय के अधीन रखा गया है, जो आधुनिक उत्तरदायी शासन की अवधारणा से साम्य रखता है। प्रजा-सुख को राज्य का सर्वोच्च लक्ष्य मानना आज के सुशासन के मूल सिद्धान्तों- भागीदारी, समावेशन और न्याय से मेल खाता है।

प्रशासनिक क्षेत्र में शुक्रनीति का मन्त्रिपरिषद् और विशेषज्ञ परामर्श पर बल आधुनिक नौकरशाही और नीति-निर्माण की संरचना से जुड़ता है। योग्यता, अनुभव और नैतिकता को प्रशासनिक चयन का आधार मानना मेरिट-आधारित प्रशासन की आधुनिक अवधारणा का पूर्वरूप है। यह सिद्धान्त भ्रष्टाचार-नियन्त्रण और संस्थागत विश्वसनीयता के लिए आज भी अत्यन्त प्रासंगिक है।

अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के सन्दर्भ में शुक्रनीति की कूटनीतिक दृष्टि विशेष महत्त्व रखती है। युद्ध को अन्तिम विकल्प मानना और साम, दाम, दण्ड, भेद का विवेकपूर्ण प्रयोग आधुनिक शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व और शक्ति-सन्तुलन की नीति से मेल खाता है। वैश्विक कूटनीति में संवाद, आर्थिक सहयोग और रणनीतिक संयम की आवश्यकता आज और अधिक बढ़ गयी है।

आर्थिक नीतियों में भी शुक्रनीति की प्रासंगिकता स्पष्ट है। न्यायपूर्ण कर-प्रणाली, कृषि, व्यापार, शिल्प के सन्तुलित विकास और सतत अर्थव्यवस्था के सिद्धान्तों से साम्य रखते हैं।

इस प्रकार शुक्रनीति आधुनिक लोकतान्त्रिक समाज के लिए केवल ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं अपितु नैतिक शासन, सामाजिक न्याय और सन्तुलित विकास का प्रेरक स्रोत है। यह भारतीय ज्ञान-परम्परा का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और बहुआयामी नीति-ग्रन्थ है, जो आदर्शवाद और यथार्थवाद के मध्य सन्तुलित समन्वय प्रस्तुत करता है। यह ग्रन्थ स्पष्ट करता है कि भारतीय चिन्तन-परम्परा मात्र आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने शासन, समाज, अर्थव्यवस्था और अन्तरराज्यीय सम्बन्धों जैसे व्यावहारिक क्षेत्रों पर भी गहन एवं सूक्ष्म विचार किया है। धर्म, अर्थ और नीति को परस्पर विरोधी न मानकर उन्हें एक-दूसरे का पूरक स्वीकार करना शुक्रनीति की केन्द्रीय विशेषता है। आधुनिक भारत के सन्दर्भ में, जहाँ लोकतान्त्रिक शासन, नैतिक नेतृत्व और समावेशी विकास की निरन्तर चर्चा होती है, शुक्रनीति के सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक हैं। नीति-निर्माण, प्रशासनिक सुधार, सामाजिक न्याय और कूटनीतिक सन्तुलन के क्षेत्र में यह ग्रन्थ एक मूल्यवान् वैचारिक आधार प्रदान करता है। अतः शुक्रनीति न केवल अतीत की बौद्धिक धरोहर है, अपितु वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरक व मार्गदर्शक ग्रन्थ के रूप में पुनः अध्ययन और विमर्श की अपेक्षा रखती है।

सन्दर्भ-सूची-

1.नीतिशतकम्- 17
2.स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एन्शिएन्ट इण्डिया- डॉ. ए. एस. अल्तेकर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (1954) पृ. सं. 7-8
3.शुक्रनीति- 1.56
4.महाभारत- शान्ति पर्व 56.15
5.शुक्रनीति- 4.7.424
6.वही- 4.7.425
7.भागवतपुराण- स्कन्ध 8
8.शुक्रनीति- 4.7.423
9.वही- 1.26 व 27
10.वही- 1.64
11.वही- 1.71 व 72
12.कौटिलीय अर्थशास्त्र- 3.6
13.मनुस्मृति- 7.27
14.शुक्रनीति- 1.353
15.वही- 2.7-9
16.वही- 2.88-95
17.वही- 4.1.52
18.वही- 4.1.54 व 55
19.वही- 4.1.67
20.वही- 4.1.97
21.मनुस्मृति- 8.126-128
22.शुक्रनीति- 4.2.2
23.वही- 4.2.130
24.वही- 4.2.107-129
25.वही- 4.2.9
26.वही- 4.7.299
27.वही- 4.7.294 व 295
28.वही- 4.7.234

29.वही- 4.7.6
30.वही- 4.7.7
31.वही- 4.7.15-17
32.वही- 4.4.1-5